प्रकाशक—
सन्मति ज्ञान पीठ,
लोहामण्डी, आगरा

प्रथम संस्करण
[वीराब्द २४७६]
मूल्य १)

मुद्रक—
जगदीश प्रसाद अग्रवाल, एम. ए., बी.
दी एजूकेशनल प्रेस, आगरा

उनको

जो

एकान्त में बैठकर

आध्यात्मिकता

के

जीवन-गीत

गुन-गुनाया

करते हैं !

दो शब्द

श्रद्धेय उपाध्यायश्री जी की कुछ नई-पुरानी कविताओं का यह लघु संग्रह आपके कर कमलों में अर्पित है। उपाध्याय श्री जी की कविताओं के पुराने संग्रह सब के सब समाप्त हो चुके हैं, उनमें से आज कोई भी नहीं मिल रहा है। अतएव कुछ सज्जनों के निरन्तर आग्रह को ध्यान में रखकर उपाध्याय श्री जी के लघु गुरुबन्धु मुनि श्री अमोलकचन्द्र जी महाराज ने प्रस्तुत संग्रह का संपादन किया है।

आप इसमें कुछ प्रारंभिक रचनाएँ पायेंगे, जो अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं। कुछ और नई पुरानी चीजें हैं। उपाध्यायजी के लिखने का उद्देश्य जनता को नैतिक विचार देना है, वह आप इस पुस्तक में भी प्राप्त कर सकेंगे।

रतन निवास
वसन्त पंचमी
२००६

रतनलाल जैन
मन्त्री—सन्मति ज्ञानपीठ
आगरा



पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि
जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढेः पाषाण-खण्डेषु
रत्न-संख्या विधीयते ॥

भूमण्डल पर तीन रत्न
जल, अन्न, सुभाषित वाणी,
पत्थर के टुकड़ो में करते
रत्न-कल्पना पामर प्राणी ।

कविता

अन्तः प्रेरणा है,

उसका

उद्देश्य है

जन-मन को

जागृत

करना !

अ
म
र
मा
धु
री

या धर्मामृतपानसोदमधुरा,
सा माधुरी माधुरी ।



अमर-माधुरी

शिव-संकल्प

पाके असीम सुख-भोग न मस्त होऊँ,
दुःखौघ में न अणु भी निज धैर्य खोऊँ,
होवे सदैव मम मानस शान्त कैसा ?
विक्षोभ-हीन अतिशान्त महाब्धि जैसा।

देखूँ कभी अगर दोष स्वकीय देखूँ,
देखूँ यदा गुण-विभा परकीय देखूँ;
कौव्वा मदीय दृग में अहमेव होऊँ,
धो-धो सदा निज मनोमल हंस होऊँ।



क्रोधी बनूं निज बुरी कलि वृत्तियों पै,
मानी बनूं निज भली शुचि वृत्तियों पै,
मायी बनूँ निज महत्त्व-सुगुप्तता में,
लोभी बनूँ अमित सद्गुण अर्जना में।

चाहे मदीय कितना अपमान होवे,
पीछे पड़े जन-समूह भले विगोवे;
होवे न ग्लानि अणु, नित्य प्रसन्नता हो,
स्वोदेश्य के सुपथ की दृढ लक्ष्यता हो।

स्वातन्त्र्य-हीन बन नैव परोन्मुखी हूँ,
स्वात्मीय कार्य खुद ही करके सुखी हूँ,
पार्श्वस्थ पै न अपना कुछ बोझ डालूँ,
जो हो सके, समुद तो पर का सँभालूँ।

क्या बाह्य आन्तर सभी कुछ एक ही हो,
द्वैतान्धकार मुझ में अणु भी नहीं हो;
जानूँ न क्या छल, प्रपच, प्रवचना है?
साक्षात सत्य-प्रभु की सदुपासना है।

त्यागी बनूँ, अखिल कृत्रिमता हटाऊँ,
स्वाभाविकी सरसता समता बढ़ाऊँ,
होवे प्रवृत्ति मुझ से वह एक-मात्र,
होऊँ जिनेन्द्र-सम शुद्ध शमैक-पात्र।

आत्मा मदीय वर कांचन-सा खरा हो,
कैसा न क्यो कुजन का नित आसरा हो,
आवे जरा कलुष का इस पै न जंग,
होवे स्वरूप शुचिरूप कभी न भंग!



दुष्ट-जन

भूलो बिल्कुल भी नहीं जगत मे दोषान्ध की दुष्टता,
प्रेमी हो, मृदु हो, सभी समझलो माया-भरी शिष्टता।
मीठा-सा पहले सुगीत अति ही सत्स्नेह से गायगा,
धीरे से फिर पास आ मशक-ज्यो काँटा चुभा जायगा॥

पुण्य और पाप

क्या है अन्तर पाप-पुण्य कृति का कर्तव्य-विस्तार मे ?
पाते हैं, यह प्रश्न नित्य उलझा जिज्ञासु-ससार मे।
बाह्याचार समस्त छोड़, धिषणा भावाग पै डालिए
अच्छे और बुरे विचार क्रमश पुण्याघ के जानिए॥

सन्देश

पापी को भी जिस विधि बने दे सहारा उठाओ,
औरों को भी स्वजन सम सस्नेह छाती लगाओ।
सोतों को भी निज वचन की घोषणा से जगाओ,
सत्कर्मों से सफल अपना जन्म जल्दी बनाओ॥

चाहे कैसा रुचिर सुख हो गर्व में नैव भूलो
चाहे कैसा असह दुख हो धैर्य को नैव भूलो।
दो बातें ये निज हृदय में सर्वदा याद रक्खो,
शोभा-शाली मनुज भव का पूर्ण साफल्य चक्खो॥

व्यर्थ जन्म

स्वय की रक्षा में विदलित हुआ लक्ष्य पर का,
बढ़ी मिथ्या तृष्णा अधिपति बनूँ विश्व-भर का।
फँसा भोगाशा मे दुरतिथि बना नर्क-घर का,
गँवाया हा ! चिन्तामणि-सम वृथा जन्म नर का ॥

हँसा खेला रोया विकल-मति था बाल-पन मे,
युवावस्था में था रसिक प्रिय रामा व धन मे।
बना बूढ़ा देखा तदपि गत व्यामोह सपना,
गँवाया हा ! तू ने अथ इति वृथा जन्म अपना ॥

हिम

नन्हा-सा अति ही सुकोमल खड़ा था धान्य पौधा कहीं,
सर्दी में हिम ने अरे पलक में मारा विचारा वहीं।
पापात्मा हिम भी गला तरणि के पैरों तले ध्वस्त हो,
कोई भी जग मे न दुष्ट पर को दु खी बना मस्त हो ॥

महेच्छा

मनुष्य की है जग में महेच्छा,
यही कि कैसे सरदार[1] होऊं ?
जरा विचारा मन में कभी भी ?
यही कि कैसे सरदार[2] होऊं ?

कामना

वीर स्वामी ! मम हृदय में एक ही कामना है,
पूरी कीजे वस इक यही और ना याचना है।
हाँ, तेरा ही मरण घटिका में दृढ-ध्यान होवे;
आसंगों का कुछ न अणु भी चित्त में भान होवे॥

१ बड़ा आदमी
२ सूली पर मस्तक चढाने वाला, अर्थात् दु ख उठाये विना वडप्पन नहीं प्राप्त होता ।

आन्धी

आँधी ! तूने गगन चढ़ के सूर्य को भी दबाया
पाके अभ्युन्नति प्रबलता क्या यही कृत्य भाया ?
श्रीमान् भास्वान् गगन-तल में दीप्त यों ही रहेगा
लम्बा-चोड़ा तव तनु अभी किन्तु भू पै गिरेगा ॥

माधुर्य

अरे भोले मित्रो ! तज कलह प्रेमी नर बनो
सुधा-जैसे मीठे अखिल जग—श्रेयस्कर बनो
स्वयं ही पूजेंगे चरण-कमलों को जन सभी
घृणा का पाएगा अणुभर कहीं चिह्न न कभी

अमर नाम

दीनों के हित जो कि सर्व अपनी लक्ष्मी लुटा जा
आड़े वक्त स्वदेश पै बलि स्वयं की भी चढा जाय
आँखों में सब के सदैव सुरमा होके समा जा
सौवर्णाक्षर में स्वनाम अविनाशी वे लिखा जायँ

आत्मोद्धार का मार्ग

पापी जो कि मिले सहर्ष उस को धर्मी बना दीजिए,
भूला जो कि मिले सहर्ष उसको रास्ता बता दीजिए।
द्वेषी जो कि मिले सहर्ष उसको प्रेमी बना लीजिए,
आत्मोद्धारक मार्ग है बस यही स्वान्ते जचा लीजिए॥

अनित्यता

लक्ष्मी का आनन्दी झूला,
टूटेगा जल्दी, क्या भूला?

खाली ही हाथों जाएगा,
कौडी भी ना ले पाएगा॥

आना है तो जाना भी है,
पाना है तो खोना भी है।

चाहे कोई कैसा ही हो,
हँसना है तो रोना भी है॥

सन्मित्र

मायावी बन के परस्पर कभी बातें छुपाते नहीं,
कष्टों में निज आर्त मित्र लख के आँखें चुराते नहीं।
पापों के कुविचार का स्व-पर में फंदा लगाते नहीं,
सच्चे मित्र कदापि प्रेम पथ में दम्भी कहाते नहीं॥

दम्भी मनुष्य

मायाचारी खल मनुज का रूप क्या है, बताएँ,
अच्छा जाएँ धरणि-धर के दृश्य को देख आएँ।
कैसा भव्याकृति सम बना दूर से भासता है,
ऊँचा नीचा विषम कितना पास में दीखता है॥

चन्द्र

श्रीमच्चन्द्र! विशाल व्योम-तल में देदीप्यमानांग हो,
चारों ओर असंख्य सैन्य उडु के ऐश्वर्य के सङ्ग हो।
क्या मालूम नहीं दिवाकर यदा पूर्वाद्रि पै आयगा,
सारा ही प्रभुताधिपत्य पल मे प्रध्वस्त हो जायगा।

कमनीय कामना

पापाचार न एक भी जगत में होवे कहीं भी कभी,
बूढ़े, बाल, युवा समस्त जन हों धर्मैकप्रेमी सभी।
पृथ्वी का हर एक मर्त्य पशु से साक्षात् बने देवता,
पावे पामर पाप मूर्ति जगती स्वर्लोक सी श्रेष्ठता॥

सज्जन-मैत्री

कैसी प्रेमामृत-रस-भरी शिष्ट की मित्रता है?
पूर्व-क्षीणा प्रतिदिन परं अप्रत. तीव्रता है।
गन्ने मे ज्यों उपरितन से मूल की ओर आएँ;
ग्रन्थिं-ग्रन्थिं प्रति अधिक ही दिव्य माधुर्य पाएँ॥

दुर्जन-मैत्री

स्वार्थ-प्रेमी अधम नर की कीदृशी मित्रता है?
लम्बी-चौड़ी प्रथम दिन तो बाद में क्षीणता है।
गन्ना ज्यों-ज्यों अवनितल से ऊर्ध्व होता गया है;
त्यों-त्यों स्वीया रस-मधुरिमा हन्त! खोता गया है॥

वर्षा-बिन्दु

वर्षा के जल बिन्दु ऊर्ध्व अति ही स्वर्व्योम के न
आए भूतल पै विरोध शतश पाते नभस
नैजास्तित्व मिटा धरित्रि-तल की, को दूर ग्री
सूखे वृक्ष हरे-भरे सब किए धन्या परो

अहंकार की इति

पाके जो प्रतिपूर्णता व प्रभुता गर्वान्ध हो
भाई बन्धु सता स्व-जाति-कुल के जल्दी खता
आती है जब पूर्णिमा गगन में क्या चन्द्र का
तारा-वृन्द बना हतप्रभ पुनः होता स्वयं

अत्याचार

कहो, कैसे श्रीमान् द्युमणि ! मुख निस्तेज
कहाँ विश्व त्रासी वह प्रलय- सा रूप
पता क्या पाएगा, त्वदुपरि तमोराज्य
भला अन्यायी का स्थिर कब यहाँ सौख्य

गुण-पूजा

करो गुणों का अविकाश पूर्वतं,
स्वयं खिचे सेवक लाख आयँगे।
प्रसून ज्यों ही इक बाग में खिला,
द्विरेफ त्यों ही झट आ गुँजायँगे।

मनुष्य जो हो गुण-हीन वे भला,
यश प्रतिष्ठा स्तुति पा सके कहाँ?
शरासनों का गुण युक्त मान है,
वराटिका भी नहि मूल्य है कहाँ?

छिपी कभी है गरिमा गुणौघ की ?
असत्य निन्दामय कुप्रचार से।
दबा सहस्रांशु कभी प्रभात में ?
विभावरी—सञ्चित अन्धकार से !

विकार की कुत्सित कालिमा जमी,
विचार का ले जल साफ कीजिए।
महान है दर्पण चित्त-शुद्धि का,
निजात्मा का फिर दर्श लीजिए।

वृक्ष

बिठाए छाया में नर, पशु सभी साम्य-मति से,
खिलाए सारे ही मधु-फल सदा वर्ष-गति से।
कटाया हाँ, प्यारा निज-तनु, बना दीन-कुटिया;
अहो, धन्यात्मा श्री तरु ! सफल त्वज्जन्म-घटिका॥

ओस

परोपकारी वनना तुम्हे तो,
अमूल्य शिक्षा कुछ ओस से लो।
करो सभी सत्कृत गुप्तता से,
प्रसिद्धि का नाम न भूल से लो!

समस्त संसार प्रसुप्त होता
यदा, तदा भू-पर ओस आती।
निशा-निशा में कर आर्द्र खेती;
प्रभात होते जग में न पाती।

चतुर और मूर्ख

चतुर नर वही है विश्व में कार्य-कर्ता,
प्रथम हृदय में जो सोच के बोलता है।
हत-मति नर पीछे सोचता, किन्तु पूर्व,
स्व-मुख बिन विचारे श्वान-ज्यों खोलता है॥

वीर-व्रत

आपत्ति के अतल सागर में बहूँगा,
संसार के विविध भर्त्सन भी सहूँगा।
जो भी कभी वचन मैं मुख से कहूँगा,
पूरा अवश्य उस को कर के रहूँगा।

दान

भूखा कोई जन यदि कभी द्वार पे आ पुकारे,
'भाई ही है' समझ अति ही प्रेम से बोलिएगा।
आगा पीछा बस कुछ नहीं देखिए, दान दे के
दीनार्थी के झटिति कुदशा-पाश को खोलिएगा॥

चन्द्र के प्रति

होती सदैव अपने घर में प्रतिष्ठा,
सर्वत्र अन्य घर में घटती महत्ता।
राकेश-मंडल यथा रवि-गेह जाके,
होता हत-प्रभ विरूप पलाश-पत्ता।

अखिल-भूतल को निज ज्योति से,
धवल, सुन्दर, सौम्य बना दिया।
निज कलंक न किन्तु मिटा सका,
कुमुद बन्धु! बड़प्पन क्या लिया?

लघु तथा कृश थे, जग-वन्द्य थे,
जय कि हे विधु ! थी अकलंकता।
अब प्रपूर्ण तथापि न मान है,
हृदय अंकित है सकलंकता।

छोटे बनो तुम सदा लघुता बड़ी है,
पाके गुरुत्व मिलती विपदा कड़ी है।
तारे सहस्र नभ में द्युतिमान होते,
पूर्णेन्दु का ग्रहण नित्य महत्त्व खोते।



लक्ष्मी और दरिद्रता

समुद्रजा का स्थिर-वास है कहाँ ?
जहाँ कि, उद्योग सुसम्प-भाव है।
दरिद्रता का स्थिर-वास हे कहाँ ?
जहाँ कि, आलस्य कुसम्प-भाव है।

मयूर

मयूर ! तेरी सुषमा—प्रदर्शिनी
नितान्त है धार्ष्ट्य भरी विमूढ़ता।
दिखा रहा ढोंग पुर समृद्धि का,
परन्तु है पृष्ठ नितम्ब-नग्नता।

गुण-दर्शन

कैसा प्रगाढ गृह मे तम छा रहा है,
सूझे न किंचिदपि जी अकुला रहा है।
देती समुज्ज्वल प्रकाश दिया सलाई,
स्वात्मा जला कर सदा करती भलाई।

दोष-दर्शन

क्या ढा रही गजब घोर दियासलाई,
लेगी तृणोत्कर जला कर क्या बड़ाई?
त्वद्वह्नि से अपर को फिर क्लेश होगा,
त्वद्देह ही प्रथम भस्म-निशेष होगा।

खल

सुवर्ण का कुम्भ विषाम्बु से भरा,
प्रदुष्ट-चेता जन का स्वरूप है।
प्रहर्षकारी शुभ—मूर्ति वाह्यत·
परन्तु अन्तस्तल मृत्यु-कूप है ॥

हंस और काक

मराल होके पर व्यक्ति—वृन्द में,
पवित्र ही सद्गुण देखना सदा ।

परन्तु कौआ बन के कुदृष्टि से,
न दूसरों का मल देखना कदा ॥

भूमि-भार

धनाढ्य क्या परोपकार में न योग दे सका
दुखी व दीन बन्धु से न प्रीति-स्नेह ले सका ।

स्वकीय पेट-पूर्ति पै घृणा हजार बार है,
मनुष्य-रूप में पशू वृथैव भूमि-भार है ॥

समुद्र

रे वारां निधि ! व्यर्थ ही गरजता,
आती त्रपा क्या नहीं ?

पाया अक्षय-वारि किन्तु कुछ भी,
सत्कार्य भाया नहीं ?

नन्हीं-सी चिड़िया तृषार्त तट पे,
आई बड़े प्यार से ,

पीके किन्तु उदग्र क्षार जल हा!
लौटी तत्र द्वार मे ॥

लक्ष्मी

बढ़ी स्व-सीमाधिक इन्दिरा उसे,
सदा प्रजा के हित छेदते रहो।
किया न ऐसा यदि लोभ-लुब्ध तो,
बढ़े नखो-सा क्षत झेलते रहो।

क्रिया-शून्य

पढ़ा लिखा है मतिमान भी है,
न सत्क्रिया तो कुछ भी नहीं है।
सुशास्त्र—पाठी शुक राम-भक्त,
रहा क्रिया—शून्य पशू वही है।

ईश्वर-दर्शन

समस्त संसार विशोध डाला,
मिला नहीं ईश्वर-दृश्य हारा।
वृथा फिरा ईश्वर पास ही था,
मनुष्य का सुन्दर रूप प्यारा॥

शब्द-जाल

लड़ो कभी भी मत शब्द-जाल पै,
लखो महासत्य छिपा निगूढ जो॥
न धेनु का बाह्य स्वरूप देखना,
ग्रहो सुधा-सा अति शुद्ध दूध जो॥

धूम्र के प्रति

उठा रहा है सिर आसमां में,
सगर्व पार्श्व-स्थ रुला रहा है।
सँभाल रे धूम्र! स्वदेह को क्यों
स्व-मृत्यु का दृश्य भुला रहा है?

सुकाल और दुष्काल

उदार दानी नर के स्व-देश में,
प्रमोद आमोद सदा सुकाल है।
कॅंजूस स्वार्थी नर के स्व-देश में,
महान् दुःखौघ सदा दुकाल है॥

असत्य

देखे शास्त्र अनेक सर्व मत के जिज्ञासु की दृष्टि से,
देखे उद्भट बुद्धिमान् जन भी चातुर्य की दृष्टि से।
पाया उत्तर एक ही सब कहीं मैंने सभी से यही,
मिथ्या भाषण के समान जग मे दुष्कर्म कोई नहीं॥

जैन

सारी संसृति में सदैव सब के
हो साथ में एकता।

अच्छी और बुरी कभी न अपने
हो चित्त में द्वैतता।

भोगासक्ति हटा समग्र जग की
आत्मत्व में लीन हो

जैन—श्रीपद की यही सफलता
व्यामोह से हीन हो॥



मैं

मैं मांस-अस्थि-भर का पुतला नहीं हूँ,
जो कष्ट के चरण में गिरता चलूँ रे।
मैं इन्द्र[1] हूँ अटल नित्य अखण्ड रूप,
स्वोद्देश्य के सुपथ से फिर क्यों टलूँ रे?

मैं देह, बुद्धि, मन, भाषण, इन्द्रियों का,
स्वामी महान दृढ़ शासन-कार्य-कारी।
मेरा निदेश इनको सब भाँति मान्य,
मैं क्या भला बन सकूँ इन का भिखारी?

१—आत्मा।

पाताल भूमितल उन्नत स्वर्ग—लोक,
हुँकार से मम जगत्त्रय गूँज जाते।
क्या देव, दानव, सभी पद-पंकजों की,
सद्भक्ति से रज स्वयं, शिर पै चढ़ाते।

आत्मत्व के अति समुन्नत शृंग पै हूँ,
शंका, भय, भ्रम न छू सकते जरा भी।
सद्भावना सुरभि-गन्ध अनन्त फैली,
दुर्भाव की दुरभि-गन्ध न है जरा भी।

मैं हूँ मनुष्य मुझ-सा न पवित्र अन्य,
होती जय-ध्वनि सदा 'नर, धन्य! धन्य' !!
संसार का सुख-विधायक केन्द्र हूँ मैं,
सच्चा शिवंकर पवित्र जिनेन्द्र हूँ मैं।

पाप नहीं छुपते

पाप कर्म न जाते हैं,
छुपाए जग में कभी।
हवा में फैल जाते हैं,
दुर्विचिन्तित भी तभी॥

प्रण-वीरता

अशुश देह हो जाए,
शत्रु हों स्नेही सभी।
सत्य के मार्ग में जाके,
पीछे न हटना कभी॥

कवि और शुक

[परतन्त्रता]

कैसा सुवर्ण-मय सुन्दर पींजड़ा है,
द्राक्षादि खाद्य बहु भाँति भरा पड़ा है।

आनन्द है सतत, खेद जरा नहीं है:
तेरे समान शुक! अन्य सुखी नहीं है॥

हाँ ठीक है, उपरि ढंग बुरा नहीं है,
मत्तुल्य किन्तु दुखिया जग में नहीं है।

ज्वालामुखी हृदय में फटसा रहा है;
स्वातन्त्र्य-हीन बन कौन सुखी रहा है?

कर्म-योग

संसार में सकल सत्त्व समुच्चता को
प्राप्त्यर्थ घोर-श्रम-मग्न रहे सदैव।
गंगे! बता अमित-तुंग हिमाद्रि से तू
आई अधस्तल धरातल क्यों वृथैव?

हाँ, क्या करूँ? उपरि मैं अकुला गई थी
कर्तव्य-शून्य गिरि-वास लगा न अच्छा।
आई अधस्तल नृ-लोक सुखी बनाने
सत्कर्म-रक्त क्षितिवास अतीव अच्छा॥

वैराग्य-रंग

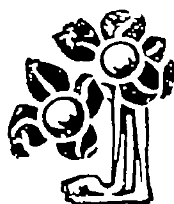
अभक्ष्य नाना-विध नित्य खाके,
वना लिया शूकर-सा शरीर।
परन्तु घूमा जब काल-चक्र,
न काम आया क्षण एक वीर।

तना खड़ा है अभिमान में क्या?
सदा नहीं सुन्दर मूर्ति होगी।
निहार लेना कुछ ही दिनों मे,
कृशानु में अन्तिम पूर्ति होगी।

विभूति का मूढ़! घमंड क्या है,
कभी चिर-स्था रहने न पाती।
दिनेश की तीन दशा दिवा मे;
अनित्यता-दृश्य सदा दिखाती।

कुटुम्ब के मोहक मोह में क्या ?
फँसा हुआ है नर चेत ले तू।
बता बचा क्या यदु-वंशियों का,
निशान कोई जग देख ले तू।

बना लिया जो घर मृत्तिका का,
प्रफुल्लता औ मद-मत्तता क्या ?
हुई प्रदग्धा जब स्वर्ण-लंका,
विमूढ ! भू पै फिर नित्यता क्या ?



गुण-हीनता

न रूप, लक्ष्मी, बल, वंश विश्व में
प्रशस्य है, सद्गुण-हीन व्यक्ति का।
भला कभी किंशुक पुष्प हो सका;
सुरूप भी पात्र जनानु-रक्ति का?

वाणी

विचारिए कोकिल और काक में,
स्वरूप से तो कुछ भी न भेद है।
तथापि वाणी किस भाँति देखिए,
करा रही हत ! सदा विभेद है॥

धर्म

[धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो॥

संसार में अखिल मंगल-मौलि रूप,
सद्धर्म संयम, तप, करुणा त्रिधा है।
देवेन्द्र तच्चरण में नत-शीर्ष होते,
जो धर्म में हृदय से रत सर्वदा है॥

अहिंसा

आवे खड्ग उठा अराति यदि तो क्या भीति की बात है,
सानन्द हँसिए, विनम्र कह यों आगे गला कीजिए।
'हत्या का स्वविनोद मात्र मुझ पै सोल्लास पूरा करें,
आगे से न कभी किसी मनुज पै, ऐसी घृणा कीजिए॥

प्राणाराति समस्त भाँति पिछड़ाने को चढ़ाई करे,
सत्यासत्य मन प्रकल्पित भले लाखों बुराई करे,
पक्का वीर दया-शिरोमणि कभी भी ना कड़ाई करे
जैसी भी निज से बने हृदय से पूरी भलाई करे॥

कष्टों के गिरि-वृन्द क्यों न शिर पै आके गिरें सर्वत,
गर्जें सम्मुख शत्रु—सैन्य कर में शस्त्रास्त्र ले गर्वत।
पक्के श्री प्रणवीर स्वीय मन में विक्षोभ लाते नहीं,
रक्खा जो इक बार वज्र-पद तो, पीछे हटाते नहीं॥

प्रश्नोत्तर

अधम से किस भाँति महान हो ?
प्रणत हो, न कभी अभिमान हो।
स्वपर-शंकर कार्य-वितान हो,
तनिक भी ममता तवता न हो॥

सुयश-केतु कदा फहरायगा ?
पतित के प्रति प्रेम दिखायगा।
समझ बन्धु स्वकण्ठ लगायगा,
नहिं घृणा कर नाक चढ़ायगा॥

अटल सत्यव्रती कब से बने ?
जब कि सत्य कहे मधु से सने ।

मरण तुल्य सहे दुख भी घने,
पर रहे प्रण पै अपने तने ॥

पशु-सखा नर कौन यहाँ हुआ ?
शठ निजोदर-पूरक जो हुआ ।

कलुष काम-मदोद्धत जो हुआ,
तज विवेक परानुग जो हुआ ॥

नर-कलेवर पाकर क्या किया ?
परहितार्थ निजार्थ भुला दिया ।

तन-धनादि सहर्ष लुटा दिया,
जगत-जन्म कृतार्थ कहा दिया ॥

विबुध क्यो जगतीतल मे बडा ?
सदुपदेश सदा करता कड़ा।
मृत स्वदेश जिला करता खड़ा,
विकट सङ्कट मे रहता अड़ा ॥

किस प्रकार विराग विचारना ?
मनुज-जीवन विद्युत-चॉदना,
स्वजन, वैभव बुद्बुद—व्यजना,
जगत स्वप्न अथेति प्रवचना ॥

गुरु-गिरा किसकी श्रवणीय है ?
चरित चारु समाचरणीय है।
विमल बोध समादरणीय है,
तप व त्याग चिरस्मरणीय है ॥

प्रशस्त-प्रार्थना

दया दुग्ध सिन्धो ! दुखी-दुःख-हारी !
सदा निर्विकारी ! भव-भ्रान्ति-हारी !
मन क्षेत्र में ज्ञान-ज्वाला जला दो
अविद्यातमस्तोम दूरी भगा दो ॥

भले ही करें लोग निन्दा-बुराई,
बनें प्राण-वैरी, न मानें भलाई।
हमें स्वप्न में भी नहीं रोष आवे,
भलाई न छोड़ें, भले प्राण जावे ॥

दुखी-दीन ज्योंही कहीं देख पावें,
कि त्योंही स्वत अश्रु धारा बहावें।
सभी भाँति आनन्द-भागी बनादें,
खुशी से स्वसंपत्ति सारी लुटादें ॥

विपद्-ग्रस्त चाहे बनें क्यों न कैसे?
रहें धैर्य-धारी हरिश्चन्द्र—जैसे।
प्रतिज्ञात-वाणी कभी भी न छोड़ें,
निजोद्देश्य की ओर निर्बाध दौड़ें ॥

किसी को नहीं जन्मत नीच मानें,
अछूतादि मिथ्या सभी भेद जानें।
घृणा पापियों से नहीं, पाप से हो,
रहें स्नेह से सर्व ही भ्रात—से हो ॥

सदा मातृ-भू की प्रतिष्ठा बढ़ावें,
पराधीनता की व्यथा से बचावें।
जहाँ हों वहाँ सभ्यता हो स्वदेशी,
कभी स्वप्न में भी नहीं हो विदेशी ॥

नहीं चाहते नर्क के दैत्य होना,
नहीं चाहते स्वर्ग के देव होना।
हमारी प्रभो! आपसे प्रार्थना है,
हमें तो मनुष्यत्व की चाहना है ॥



अछूत-क्रन्दन

'अछूत'। क्या नाम रखा हमारा
चले हृदय पै रह-रह दुधारा।
घृणा टपकती प्रति-अक्षरों से,
किए सभी भाँति नरेतरों-से॥

गिनें-गिनावें नित हिन्दुओं में,
घुसें हमारे बल कौंसिलों में।
पता न पाया पर बन्धुता का,
रहा सदा वर्तन शत्रुता का॥

तड़ाग में वस्त्र मलीन धोलें;
स्वदेह श्वा-शूकर भी झकोलें ।
पर न हम धो मुँह हाथ पावें,
निराश वापिस बस लौट आवें ॥

धजा निराली, प्रभु-मन्दिरों की;
बजें सदा पायज़ रंडियों की ।
परन्तु हम हा ! घुसने न पाते,
जगत्पिता-दर्श न पुत्र पाते ॥

उठा सड़ा कुक्कुर गोद लेते,
गज़ब कि सस्नेह मुख चूम लेते ।
समीप में हम यदि पहुँच जाते,
विदक भगें झट, बकते बकाते ॥

बनें यवन जब चुटिया कटा के,
बड़ी खुशी से गोमांस खाके।
अजी, मियाँजी! कह तब बुलावें,
झपट सिराहने पर ला बिठावें॥

बुरा हमारा बस हिन्दु होना,
भला विधर्मी अहिंदु, होना।
समूल ही बुद्धि गई तुम्हारी;
विचित्र-सी है जड़ता तुम्हारी॥

सदैव सेवा करते तुम्हारी,
अमूल्य बीती हा! आयु सारी।
हमे सँभाला तुमने कभी क्या?
'मनुष्य ये भी' सोचा कभी क्या?

शराब पीवें, गोमांस खावें,
दवा विदेशी सब चाट जावें।
तथापि ना धर्म गया तुम्हारा,
भगा कि पल्ला भिड़ते हमारा॥

नहीं महीसुर, अतिशूद्र ही हैं,
नहीं समुन्नत शिर, पैर ही हैं।
मनुष्य तो हैं अब तो सँभालो,
गरीब भाई बिगड़ें बचालो॥



सन्त-जन

मधुर मधु सुधा मे नीम-जैसे कटु है,
कठिन कुलिश-जैसे पुष्प जैसे मृदू है।
रज-कण-सम छोटे, शैल-जैसे बडे है,
चकित जगत है, ये सत कैसे घड़े है।

जगत सब अविद्या-सिन्धु मे डूब जाता,
फिर न कुछ विचारे का पता आज पाता ?
सदय-हृदय-धारी संत ही की दया है,
समय पर सहारा सर्वदा ही दिया है।

प्रिय सुत वनिता का सर्वथा मोह छोडा,
अतुल धन, धरा से भी स्वसम्बन्ध तोडा।
सुध बुध निज भूले मस्त हो घूमते हैं,
पतित जगत-जीवो को सदा तारते है,

चतुर कहत कोई, मूढ़ कोई बताता,
सकल सुखद कोई, व्यर्थ कोई सताता।
समुद युग दृगों से एक सा – देखते हैं,
अहित-हित प्रभू से सन्त ही चाहते हैं।

पतित जन घृणा से नित्य जाते सताए,
मनुज-कुलज जाते श्वान ज्यों दुर दुराए।
अवनति अति होती जा रही है जिन्हों की,
जनम-भर बजाते संत सेवा उन्हों की।

सघन घन घटाएँ संकटों की घिरी हैं
पर, न अचल वाणी सज्जनों की फिरी है।
अभय हृदय आगे मृत्यु भी काँपती है,
[1]हरि लख हरिणी सी भीत हो भागती है।

---

१ सिंह

क्षमा

क्षमा-समान श्रेष्ठ ज्येष्ठ धर्म और कौन है ?
भला सुमेरु से बड़ा गिरीश और कौन है ?
क्षमा बिना समग्र उग्र कर्म-काण्ड व्यर्थ है,
अभीष्ट स्वर्ग-मोक्ष-सौख्यदा यही समर्थ है।

निकाल लाल-लाल आँख नाक-भौंह सिकोड के,
असभ्यता-प्रपूर्ण भ्रष्ट-भ्रष्ट गालियाँ बके।
सदा प्रचण्ड क्रोध की दवाग्नि से जला मरे,
मनुष्य क्या, पिशाच है, कभी न जो क्षमा करे।

क्षमा वही स्वमित्र के समान शत्रु को लखे,
कभी किसी प्रकार की विरोधिता नहीं रखे।
प्रशान्त चित्त से सदैव स्नेह-स्रोत सा बहे,
मुखारविन्द पै कृपामयी प्रसन्नता रहे।

असह्य भर्त्सना तथा वध प्रहार भी सहो,
अखंड श्रेय सर्वथा स्व-शत्रु का सदा चहो।
मसीह सूलि की सुतीक्ष्ण नोक पै चढ़ा हुआ,
प्रसन्न हो, विरोधि-अर्थ माँगता रहा दुआ।

पलिष्ठ के समक्ष 'चूँ' करें न, मौन साध लें,
परन्तु दीन-हीन पै तुरन्त खड्ग तान लें।
नपुंसकाग्रगण्य वे मनुष्य नीच निंद्य हैं,
क्षमाव्रती-समाज में नहीं कदापि वंद्य हैं।

जागरण

मै प्रबुद्ध-विबुद्ध हूँ,
अज्ञान है मुझ मे कहाँ?
सब ओर पूर्ण प्रकाश मेरे
ज्ञान का फैला यहाँ।
अन्त करण से पाप मूलक
भावनाएँ भग गई,
अध्यात्म हर्ष-प्रसारिणी
सद्भावनाएँ जग गई।

अत्युग्र मम संकल्प की
दृढ़ शक्ति रुक सकती नहीं।
जो विचारूँ,
सो करूँ,
क्या बात हो सकती नहीं।
विश्व का अणु-अणु खड़ा है,
बस, मेरे अधिकार मे।
सम्राट् मैं,
विभ्राट मैं
परिव्राट मैं,
संसार मे।

संसार में कोई नहीं!
जो मुझ पे निज-शासन करे।
नरक दे, या स्वर्ग दे!
पापी तथा पावन करे।

मैं स्वयं ही हूँ,
स्वय के भाग्य का स्रष्टा अटल,
वज्र अंकित है,
मेरी कर्तव्य की सीमा अचल।

आफतों की बिजलियाँ
अविराम-गति गिरती रहें!
खंडशः तनु हो,
तथा निज रक्त की
धारा बहे।
भय भ्रान्त होकर,
लक्ष्य से,
तिल मात्र हट सकता नहीं!
उत्साह का
दुर्दम्य तेज पुंज,
घट सकता नहीं।

मैं चढ़ रहा हूँ,
नित्य
विमलाचरण के सोपान पर,
पा रहा हूँ,
नित्य जय
आसक्ति के तूफान पर,
बुद्ध, जिन वर, और
हरि हर, गौड, पैगम्बर, खुदा,
वस्तुत मुझ में,
सभी हैं,
है न, कोई भी जुदा।



चाह्

चाह नहीं, सुख-धाम स्वर्ग में देवराज बन जाने की,
चाह् नहीं, बन धर्म-प्रवर्तक जग मे पैर पुजाने की।
चाह नहीं, रण-मत्त अजित भट विश्व-जयी कहलाने की,
चाह् नहीं, धन-राशि अमित पा धन कुबेर पद पाने की॥

चाह् यही अज्ञात रूप से,
पड़ा रहूँ जग मे भगवान।
दुखी दीन दुर्बल की सेवा मे
हो जाऊँ, हँस-हँस बलिदान॥

आज के भक्त

स्नान किया उठ प्रात-निरंतर,
चित्त का मैल परन्तु हटा ना;
शीतल चन्दन भाल लगा
अरु मस्तक-क्रोध परन्तु घटा ना।
माला फिराते छिली अंगुली,
जग-चाह का पाश परन्तु कटा ना;
भक्त बना क्या छका मद में
भगवान के पन्थ परन्तु डटा ना॥



पुस्तक

पुस्तक ! तुम हो कितनी सुन्दर ?
बड़ी विलक्षण ! बड़ी मनोहर !
मगल-मय अस्तित्व तुम्हारा,
लगता है प्राणों मे प्यारा ॥

अक्षर अक्षर मधुर अनूठा,
बिना तुम्हारे सब जग झूठा !
बहते विमल भावके झरने,
त्रिविध ताप जगती का हरने ॥

पढ़ते ही हो दूर अँधेरा,
अन्तर्जग में स्वर्ण सवेरा।
कागज का तुम जड़ तन धारे,
करती नित हित मौन इशारे ॥

स्वर्ग, भूमि, पाताल, नदी, नग,
प्रतिबिम्बित है तुम में सब जग।
भूत, भविष्यत, वर्तमान से,
भेंट कराती बड़ी शान से ॥

छिपे तुम्हारे मृदु पृष्ठों पर,
वीर, बुद्ध, यदुनन्दन, रघुवर।
जब मन चाहें तबही पावन,
दर्शन कर सकते मन भावन !!



क्षण-भंगुरता

भीम जैसे बली फेंके नभ मे गजेन्द्रवृन्द,
पार्थ-जैसे लक्ष्यवेधी कीर्ति जग-जानी है।
राम, कृष्ण जैसे नर-पुंगव जगत-पति,
रावण की दैत्यता भी किसी से न छानी है।

काल के न आगे चली कुछ भी बहाना बाजी,
छिनक मे छार भये रह गयी कहानी है।
तेरे जैसे कीटाकार मूढ़ की बिसात क्या है,
करले सुकृत चार दिन जिन्दगानी है॥

परोपकार

ग्रीष्म में दवाग्नि-जैसो झल के प्रचण्ड धूप,
पथिकों को अति ठंडी छाया में बिठाता है।
वर्षा में धूँवाधार पानी निज शीष ओट,
नर पशु पत्ती भींग जाने से बचाता है॥

शीत में तुषार और पवन से त्राण पाने,
दीनों का तो जैसा है सहारा बन जाता है।
पर-उपकार हीन नर-तन-धारी से तो,
वृक्ष ही है अच्छा, जो कि अग कहलाता है॥

खल

देखनी हो खल की प्रकृति कैसी होती है,
तो नाचते मयूर का स्वरूप लख लीजिये।
अग्र भाग कैसा रम्य नाना भाँति-रंगयुत,
मानो दिन रात खड़े-खड़े देखा कीजिये॥

किन्तु जरा घूम फिर पीछे की तरफ चल,
एक बार रूप-लोभी नेत्र खोल दीजिये।
आगे कुछ ओर है तो पीछे कुछ ओर ही है,
मात्र अग्र भाग पै न रीझिये पतीजिये॥

दोषदृष्टिपरं मनः

स्वर्णपात्र-भरे शुद्ध मेवा औ मिष्टान्न छोड़,
शूकर पुरीष की ही खुशियाँ मनाता है।
मक्खिका को सुन्दर शरीर पै जखम छोड़,
पुष्प-माला आदि अन्य कुछ नहीं भाता है

नीच जोंक सुरभी के स्तन में लगा के मुंह,
दुग्ध-पान छोड़ गंदा रक्त चूस जाता है।
दुष्ट दुराचारी भी गुणी के पास बैठ मात्र,
दोष देखता है, नहीं गुण देख पाता है॥

मस्तक-रत्न

जब विश्वहितंकर सन्त मिलें, चरणों पड़ धूलि लगावत है।
फस संकट-चक्र कभी निज को न असत्य समक्ष झुकावत है॥
कुविचार न एक कदापि उठे सुविचार असंख्य उठावत है।
नर रत्न जगत्त्रय-पूजित का वह 'मस्तक' रत्न कहावत है॥

मानस-रत्न

स्फटिकोज्ज्वल स्वच्छ सदैव रहे अघपंक सुदूर हटावत है।
जगनाथ अनंत दयानिधि को मन-मन्दिर बीच बसावत है॥
निज के दुख में पवि, तो पर के नवनीत सदा बनजावत है।
नर रत्न जगत्त्रय पूजित का वह 'मानस-रत्न' कहावत है॥

आनन-रत्न

सुख हो, दुख हो, कुछ हो प्रभु के अविराम गुणस्तव गावत है।
प्रिय मित्र तथा अरि हो सबको हित शिक्षण सत्य सुनावत है॥
अपने गुण के प्रति मौन रहे पर के गुण स्पष्ट बतावत है।
नर रत्न जगत्त्रय पूजित का वह 'आनन रत्न' कहावत है॥

हस्त-रत्न

मरणोन्मुख रंक बुभुक्षित हो पर-द्रव्य कभी न उठावत हैं
दलितादिक बेबस को गहि बाँह स्वबन्धु बनावत हैं
निज देश समाज-हितार्थ सभी धनराशि सहर्ष लुटावत
नर रत्न जगत्त्रय पूजित के 'कर युग्म सुरत्न' कहावत हैं

चरण-रत्न

प्रण-वीर महान, न स्वत्व कभी नय-मार्ग विसार गँवावत
दुखिया जन कोई सुनें तो वहाँ सुख-मूल के दौड़ लगावत
कट जाँय सहर्ष रणांगण में पर पैड न एक डिगावत हैं
नर-रत्न जगत्त्रय पूजित के 'चरणोत्तम रत्न' कहावत हैं



श्रोता

सारे काम छोड़-छाड़ त्यागी गुरुओं के पास,
वाणी श्रवणार्थ जोकि नित्य-नित्य जावेंगे
शंका-समाधान द्वारा चर्चणा करेंगे खूब,
आन्तर हृदय में शुद्ध देशना पचावेंगे ॥

पीछे ना रहेंगे कभी, संकट सहेंगे सभी,
किन्तु जो सुना है उसे अमल में लावेंगे।
वे ही श्रेष्ठ श्रोताजन करके अपार भव—
सागर को पार शीघ्र मुक्तिद्वार पावेंगे ॥





भक्ति-पोत

भक्तिभाव का सुन्दर दृढ़तम,
द्रुतगामी ही नव-जलयान :
पार करे शतशतभव-वर्द्धित,
अति दुस्तर भवसिन्धु महान ।

जिनकी रग-रग में न खौलता,
भव्य भक्ति का अभिनव रक्त ।
हृदय हीन श्रद्धाविरहित वे,
हो सकते हैं क्यों कर भक्त ?

ज्यों पारस के स्पर्श-मात्र से,
बनता लोह कनक द्युतिपूर्ण ।
पामर भक्त विरक्त भक्तिरत,
त्यों भगवान बने अतिपूर्ण ॥

भक्तियोग सर्वोच्च योग है,
अगर साथ हो उचित विवेक।
सर्वनाश का बीज अन्यथा—,
अन्ध भक्ति का है अतिरेक।

सुभाषित

अकेला भूल करके भी नहीं अभिमान आता है,
भयंकर सङ्कटों का संघ अपने साथ लाता है।

× × × ×

मूर्ख का अन्त करण रहता सदा ही जीभ पर,
दक्ष के अन्त करण पर जीभ रहती है प्रवर।

× × × ×

क्लेश नौका-छिद्र ज्यों प्रारम्भ में ही मेट दो,
अन्यथा सर्वस्व की कुछ ही क्षणों में भेंट दो।

× × × ×

भंग मर्यादा हुए पर दुर्दशा होती बड़ी,
बाग से बाहिर झुका तरु भी व्यथा पाता कड़ी।

× × × ×

उड़ रही थी व्यर्थ की गप-शप कि घंटा बज गया;
मौत का ज़ालिम क़दम एक और आगे बढ़ गया।

× × + ×

दुर्जनों की जीभ सच-मुच ही नदी की धार है;
स्वच्छ सम ऊपर से, अन्दर भीम-भय-भंडार है।

× + + +

छेड़िये तो उसको जिसका शस्त्र तीर कमान है,
पर, उसे मत छेड़िये जिसका कि शस्त्र ज़बान है।



अनेकान्त दृष्टि

सरितातटवर्ती नगरों को,
रहता है आनन्द अपार।
'किन्तु बाढ़ में वही मचाती,
प्रलय काल-सा हाहाकार।

अग्नि कृपा से चलता है सब,
पाक आदि जग का व्यवहार।
किन्तु उसीसे क्षणभर में हा!
भस्म-राशि होता घर-बार।

सघन जलद सूखी खेती में,
करता नवजीवन संचार।
वही पलक में कृषक-काल हो,
करे मूल से सब संहार।

विष-लव अणु-सा भी दिखलाता,
यम-पुर का झट रौद्र द्वार।
किन्तु बचा दुःसाध्य रोग से,
बने कभी जीवन-दातार।

भला बुरा एकान्त न कोई
देखो जग में आँख पसार।
अखिल सृष्टि गुण-दोषमयी है,
किस पर करिए द्वेष और प्यार।

शिशु का अपना परिचय

पूज्य भारत मातृ-भू की,
चाहती संतान हूँ मैं।
राष्ट्र मंडल, जाति, कुल की;
जागती जी-जान हूँ मैं।

आज का लघु शिशु पयोमुख,
ना समझ नादान हूँ मै।
हाँ, भविष्यत का महत्तम;
वृद्ध वर धीमान हूँ मै।

आज क्या, रजकण ज़रासा,
तुच्छ हूँ, बे-भान हूँ मैं।
देखना कुछ दिन, हिमाचल,
विश्ववन्द्य महान हूँ मैं।

वृद्धजन—आशालता का,
पुष्प मृदु-अम्लान हूँ मैं।
सर्व-विध सौरभ गुणों का;
सुदृढ़ केन्द्र-स्थान हूँ मैं।

द्वेष से अति ही घृणा है,
प्रेम पर क़ुरबान हूँ मैं।
सौम्य सस्मित सर्व-सुन्दर,
विश्व मे असमान हूँ मैं।

नव्य युग सर्जन करूँगा,
भूत-कण्ठ-कृपाण हूँ मैं।
क्रान्ति रण का अग्र योद्धा,
विश्व का कल्याण हूँ मैं।

धर्म-ध्वंसक कुप्रथाओं,—
के लिए तूफान हूँ मैं।
दंभ का, पाखंड का, भ्रम
का, प्रलय अवसान हूँ मैं।

भूमि-तल पर विश्व पति का,
श्रेष्ठ-तम वर दान हूँ मैं।
अन्त-कर काली निशा का,
रम्य स्वर्ण विहान हूँ मैं।

कृष्ण-जैसा कर्म-योगी,
दैत्यरिपु-अभिधान हूँ मैं।
भीष्म-सा वर सयमी हूँ
भीम-सा वलवान हूँ मैं।

पुत्र गुरु गोविंद सिंह का
साहसी अति धीर हूँ मैं।
धर्म पर निज प्राण देता,
वज्र-सा प्रण-वीर हूँ मैं।

मृत्यु,-भीति, प्रलोभनों पर,
ठोकरो की तान हूँ मैं।
पंच—नद-दीपक हकीकत,
धर्म पर वलिदान हूँ मैं।

वीर-पुंगव पूर्वजों का,
भक्त श्रद्धावान हूँ मैं।
और आगामी प्रजा का,
पूज्य-पद भगवान हूँ मैं।

अन्त में माता-पिता के,
खेल का सामान हूँ मैं।
जो विचारें, सो बना लें,
देव हूँ, शैतान हूँ मैं।



दीपक

दीपक, तू सच मुच दीपक है।
अपनी देह जलाता।
तम परिपूर्ण नरक-सम गृह को,
क्षण मे स्वर्ग बनाता।

अपने मलिन धूम्र को भी तू,
तनिक न व्यर्थ गँवाता।
सुन्दरियों के चपल-दृगो में,
कज्जल रँग बरसाता।

शीष कटा कर दुगुना जलता,
तम को मार भगाता।
अमर-विजय मरने वाला ही,
पाता सदा बताता।

अपने तले अँधेरा रहता,
जग-प्रकाश फैलाता।
पर-उपकार-निरत वीरों को;
अपना ध्यान न आता।

"मैं नगण्य क्या कर सकता हूँ;
दीपक, तुझे न भाता।
सूर्य चन्द्र अगम्य स्थल में,
जग-मग ज्योति जगाता।

कोकिल-अन्योक्ति

कोकिल रसाल की निराली छवि वाली ऊँची,—
 चोटी पै मज़े से बैठ फूली ना समाती है।
नाज़ नखरे के साथ स्वादु औ सरस मञ्जु,
 मंजरी का भोजन यथाभिलाष खाती है ॥

नन्हीं-नन्हीं शाखाओं के कोमल-हरित पत्र,—
 पुञ्ज पै फुदक चित्त-हारि गान गाती है।
हा-हा ! क्षण भर में रहेगा कुछ भी न क्योंकि,—
 व्याध की बन्दूक से वह गोली चली आती है।

बिखरे फूल

सज्जनों के शीष पर संकट रहेंगे कितने दिन,
चन्द्र को घेरे हुए बादल रहेंगे कितने दिन ?

× × × ×

सकड़ों कीजे जतन पर पाप कृति छुपती नहीं,
दाबिये कितनी ही खाँसी की ठसक रुकती नहीं।

× × × ×

किस ऐंठ में फिरता है पागल, यह हवा रहनी नहीं
मध्यान्ह सी सन्ध्या-समय रवि की प्रभा रहनी नहीं

× × × ×

गर्ज कर जड़ मेघ ! क्या तू बार-बार डरा रहा,
देखले, बच्चू चला पश्चिम पवन वह आ रहा।

× + × ×

कृष्णतम से शुक्लतम बरसे प बादल होगये,
दान से दानी यशस्वी होके अपयश धोगये।

× × × ×

दुर्जनों से मित्रता कर खूब आनन्द लूटिये,
कौच-फल ले हाथ मे रो-रो के मस्तक कूटिये।

× × × ×

मित्र रवि के साथ उडुपति क्यों मलिन मुख हो रहे,
दूसरों के द्वार पर जो भी गये सब रो रहे।

× × × ×

कालेज मे जा हिन्द की प्राचीन हिस्ट्री सीख लो,
निज पूर्वजों के वृत्त की खिल्ली उड़ाना सीखलो।

× × × ×

मूर्ख कहते हैं किसे यह जानते हैं आप क्या,
जो समझता है स्वयं को बुद्धिसागर और क्या॥

× × × ×

दूसरा को दु.ख दे खुद सौख्य पाता है नहीं,
पैर में चुभते ही कांटा टूट जाता है वहीं।

विश्ववन्द्य वीर

क्रान्ति का बजा के सिंहनाद घोर गर्जना से,
आलस्य हटा के देश सोते से जगाता है
दीन-दुखी दुर्बलों की सेवा को कठोर बलि,
वेदी पै सहर्ष भेंट प्राणों की चढ़ाता है

आँखों के समक्ष स्वयं काल भी खड़ा हो क्यों न,
भीति नहीं लाता मन मेरु-सा बनाता है
सादर समस्त जग-मण्डल से धूलि भरे
अपने चरण वो हां वीर पुजवाता है

अमूल्य नर-जन्म

उपकार करो तन, से मन से
धन से, जन से, जग-दुख हरो।
अविचार, अनीति तजो सब ही,
मत वैभव का कुछ गर्व करो॥

अपने पर खूब सचेत रहो,
फिर तो जगमें अगुभी न डरो।

नर-जन्म अमोल मिला कुछ तो,
परलोकहितार्थ निकाल धरो॥

व्यर्थ-जीवन

छल-छन्द अनेक प्रकार रचे,
सदसत्-प्रविवेक विनष्ट भया,

सबके दिल मे बन शल्य रहा,
न करी कबहूँ तिलमात्र दया।

मदमत्त बना विषयासव पी
बस पीकर यौवन की विजया,

अपना पर का हित साध सका
कुछ भी नहि, व्यर्थ नृ जन्म गया।

हंस

हंस ! तुम्हारी दुग्ध-धौत-सी
निर्मल काया,
नहीं प्रशंसित, क्योंकि तुम्हीं-सा
बक भी पाया।

मानसरोवर-वास श्रेष्ठता,
क्या कथ गावें ?
जलचर वृन्द अनेक, जन्म
जब वहीं बितावें।

बड़े गर्व से अकड़-धकड़,
क्या मोती चुगते;
तुम से मत्स्य प्रशस्य,
मोती जो पैदा करते ।

हाँ, इक बात विशेष तुम्हारी,
सब जग-जानी;
करो दुग्ध का दुग्ध,
शीघ्र पानी का पानी ।

इसी बात पर मात्र तुम्हारा,
जग यश गाता;
वैभव का नहीं मान,
न्याय ही आदर पाता

लोभी

लोभी को न लज्जा होती, धर्म जाता साथ छोड़;
देश और जाति के समग्र तन्त्र देता तोड़।
पुण्य को अस्पृश्य माने पाप से ले प्रेम जोड़
स्वार्थ के समक्ष धर्म-कर्म की लगा दे होड़।

क्रूर वैरी करुणा का, हिंसा का अनन्य भक्त,
एक काणी कोड़ी हेतु बन्धु का बहा दे रक्त।
लाओ, जोड़ो, रक्खो, इन्हीं शब्दों का है ध्यान सदा,
शान्ति से न बैठ पाता हाय हाय हाय सदा।

हिंस्र सिंह व्याघ्र आदि देखते ही काँपे मन,
घूमते मसीव श्याम सर्वत. पुलिन्द जन।
ऐसे घोर वन में विता दे वर्प—वर्ष दिन,
किन्तु धर्म--स्थान में वितावे पल पल गिन।

दान की भनक कान पड़ते विदक पडे,
मानो कोटि-कोटि बिच्छू शीप पै धसक पड़े।
चमड़ी उतरवाले हँस-हँस काम पड़े;
दमड़ी न दान--नामे कभी दीन--हाथ पड़े।

अन्त समय द्रव्य कुछ काम नहीं आएगा,
दोनों हाथ खाली किये जगत से जाएगा
दान पुण्य विना आगे कुछ भी न पाए।
शीश धुन-धुन लोभी तव पछताएगा।

शरीर दुर्ग का ध्वंस

नव यौवन के अति ही दृढ़ दुर्ग,—
कलेवर मध्य मदान्ध पड़ा,
रस रगन में निज भान भुला,
भरता निशिवासर पाप घड़ा।

शठ चेतन भूप! विलोक जरा,—
ध्वज मस्तक पै वह आन गड़ा,
अब व्याधि वढ़ीं यम-सैन्य चढ़ीं,
कर दें झट बाह्य निकाल खड़ा।



दिव्य जीवन

प्रतिक्षण क्षीण जीवन में अमर खुद को बना देना,
भविष्यत की प्रजा को अपने पद-चिह्नो चला देना।

दुखी-दलितो की सेवा में विनय के साथ जुट जाना,
अखिल वैभव बिना झिझके बिना-ठिठके लुटा देना।

असत्पथ भूल करके भी कभी स्वीकार ना करना,
प्रलोभन मे न फँसकर सत्य-पथ पर सर कटा देना।

क्रमागत कुप्रथाओ का भ्रमों का मूढताओ का,
अध पाती निशा मानव-जगत में से मिटा देना।

जिनेश्वर बुद्ध हरि हर हो, मुहम्मद हो, या ईसा हो,
सभी सत्य व्रता के आगे निज मस्तक झुका देना।

सहस्राधिक प्रयत्नो से मृतक-सम देश वालों में,
नया जीवन, नया उत्साह, नया युग ला दिखा देना।

अधिक क्या, जन्म लेने का यह अन्तिम सार ले लेना।
'अमर' निज मृत्यु के दिन शत्रुओं को भी रुला देना।

आदर्श-प्रचारक

जिसका मनोबल दिव्य हो, नहीं भीतिका लवलेश हो
संसार को सत्पथ दिखाना मात्र मुख्योद्देश हो।
घन घोर संकट में भी रहता धीर जो गिरिराज-सम,
सच्चा प्रचारक है वही जो हो सुसौम्य शशांक-सम।

जो भक्ति करता है नहीं अपने विनश्वर काय की,
बलिदान होता है समुद बलि वेदी पै जो न्याय की।
नर-वृन्द में निर्भीक नंगा सत्य जो कहता सदा,
सच्चा प्रचारक है वही जो हो न कटुभाषी कदा।

घुसी हैं तुम्हारे में क्या क्या प्रथाएँ,
लगी हैं तुम्हारे भी क्या-क्या बलाएँ ?
परस्पर सभी मत्त ज्यों लड़ रहे हो,
प्रलय की प्रबल आँधी में उड़ रहे हो।

शरम है बड़ी, लक्ष्य से फिर गए हो,
महावीर-आदर्श से गिर गए हो।
भला पुत्र वे जग में कैसे बड़े हों,
पिता के शुभादर्श से जो गिरे हों।

समझ अपने आदर्श को फिर सँभालो,
हृदय में अमर वीर-वाणी जचालो।
समुद कार्य के क्षेत्र में कूद आओ,
सदा वीर जय से गगन को गुँजाओ।

आदर्श साधु

जिसने प्रबल इन्द्रिय दलों पर प्राप्त करली है विजय,
जिस का सुमानस शान्त सुस्थिर और रहता है अभय।
सुख-दुःख की परवा नहीं करता किसी भी काल में,
सच्चा वही है साधु, जो पड़ता न जग-जंजाल में।

सब विश्व के सुख-भोग को जो जानता है तुच्छ-तर,
निज संयमीय विलास को सतत समझता श्रेष्ठ-तर।
जो मन वचन और कर्म द्वारा क्रोध करता है नहीं,
अभिमान--माया-ग्रन्थि--भेदक वीर त्यागी है वही।

सन्तोष के क्षीराब्धि मे सत्स्नान जिस ने कर लिया,
तृष्णा-तरंगित--लोभनद जिस ने सुशोषित कर दिया।
जो सत्यता का, शीलता का, नम्रता का सिन्धु है,
वह वीर त्यागी है, जो सारे विश्व का वर बन्धु है।

जिस का कि लाभालाभ मे होता न चंचल चित्त है।
जिस के हृदय मे ज्ञान का अक्षय अनूठा वित्त है।
कर्तव्य-पालन की लगी रहती है जिस को नित्य धुन,
शुभ सत्य के कहने में जिस का संकुचित होता न मन।

जिस का कि भाषण नम्रता-माधुर्य से परिपूर्ण है,
तप की गदा से कर्मदल का नित्य करता चूर्ण है।
रोक दे दृढ़ धीरता के साथ इच्छा का प्रवाह,
सच्चा विरागी है, वही संसार सागर का मल्लाह।

निज नीति पालन के लिये जो कष्ट सहता है स
जो धर्म अपने की परीक्षा करता रहता है सद
जागृत सदा रहती है जिस की बुद्धि बोध-विधायि
रखता क्षमा को संग में नित शक्ति जयश्रीदायिन

ऐसा श्रमण भवभीरुओं की भीति को करता हर
निज देशना-जल से सदा त्रय-ताप को करता शम
सद्भक्ति से चरणोत्पलों में नमन देना चाहि
कर सतत सेवा 'अमर' अमरत्व लेना चाहि



तपोधन मुनि

शीत-काल में पौष माघ का शीत भयंकर सहते,
वस्त्र-हीन हो झंझानिल के दृढ़ झोंकों में रहते!
अर्धरात्रि में ताल-तीर पर ध्यान-सिन्धु में बहते,
वीर तपोधन मुनिराजों के कर्मदुर्ग द्रुत ढहते।

ग्रीष्म काल में गिरिशृंगों पर ऊँची भुजा उठाकर,
आत्म-ध्यान ध्याते हैं तनकी ममता दूर हटा कर।
बार-बार उत्तप्त प्रभंजन जाता हिला-हिला कर,
देव, देव-पति करें वन्दना कर-युग मिला-मिला कर।

वर्षा में दिन रात जोर से मेघ झमा-झम झरते,
उत्तुंगाद्रि प्रवाहित निर्झर शब्द भयंकर करते।
विद्युत के गुरु गर्जन से भी तनिक न मन में डरते,
शून्यारण्ये ध्यान धरे द्रुत भवसागर से तरते!

आदर्श-प्रचारक

जिसका मनोबल दिव्य हो, नहीं भीतिका लवलेश हो
संसार को सत्पथ दिखाना मात्र मुख्योद्देश हो।
घन घोर संकट मे भी रहता धीर जो गिरिराज-सम,
सच्चा प्रचारक है वही जो हो सुसौम्य शशांक-सम।

जो भक्ति करता है नहीं अपने विनश्वर काय की,
बलिदान होता है समुद बलि वेदी पै जो न्याय की।
नर-वृन्द में निर्भीक नंगा सत्य जो कहता सदा,
सच्चा प्रचारक है वही जो हो न कटुभाषी कदा।

धनिकों के माया-जाल में फँसता नहीं जो वीर वर;
अन्त्यज जनों पर, निर्धनों पर, प्रेम जो करता प्रवर।
जिस पर असर पड़ता कदाचित् भी न निन्दास्तवन का
सच्चा प्रचारक है वही, जो हो निराले चलन का।

होता न डाँवाडोल जिसका चित्त सशयवान हो,
भगवान के वचनों पै जिसका पूर्ण दृढ़ श्रद्धान हो।
पक्का हो अपनी आन का प्रण से नहीं हटता कभी,
सच्चा प्रचारक है वही, झगड़ा न जो करता कभी।

हो चारुतम चारित्र जिसका, रूढ़ियों का काल हो,
निर्मल समुज्ज्वल श्रेष्ट सम्यग् ज्ञान का आगार हो।
तन तोड श्रम कर के सदा कर्तव्य-पालन जो करे,
सच्चा प्रचारक है वही, जो घोरतम तम को हरे।

वन्दना

संसार सागर अपार नहीं किनारा,
तूफान मोह अति भीषण रूप धारा।
हा! प्राण कंठगत डूबन की तैयारी,
कीजे सहाय असहाय सहायकारी।

पापी अनेक भव सागर पार तारे,
दुःखार्त दीन बहुते दुख से उबारे।
लीजे जरा इधर भी अब दृष्टि फेरी,
क्यों हो रही स्वजन पै जगदीश! देरी?

तेरी अनन्त महिमा कथ कौन गावे,
देवेन्द्र देवगुरु भी बस हार पावे।
क्या थाह है जलधि के जलविन्दुओं की,
लीला अचिन्त्य कहिए गुणसिन्धुओं की।

कर्ता तुझे सब कहें पर तू अकर्ता,
शंका बड़ी विकट है अब कौन हर्ता?
कि वा विचित्र इसमें कुछ भी नहीं है,
पूर्णेन्दु से कुमुद-बोधन ज्यों सही है।

स्वर्गापवर्गसुखदायक पाप—हारी,
देवेन्द्रवन्दित जगत्त्रय-मोदकारी।
श्रद्धा से भक्तियुत वन्दन लीजिएगा,
सेवा स्वकीय कृपया बस दीजिएगा!

महावीर के चरणों में

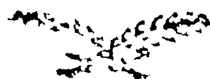
भौतिक सत्ता का दावानल,
वृद्धिगत था भीषण प्रतिपल,
महामेघ बनकर तू बरसा अति शीतल चंदन !
वीर जिन चरणों में वन्दन !

मर्म अहिंसा का समझा कर,
किए द्रवित मन-हर नारी नर,
रुका मूक पशुओं का उत्कम्पक करुणा-क्रन्दन !
वीर जिन ! चरणों में वन्दन !

धार्मिकता पै चढ़ा दम्भ-रंग,
न्याय-शृंखला हुई अखिल भंग,
तव प्रयत्न से पुनः सत्य ने पाया अभिनन्दन !
वीर जिन ! चरणों मे वन्दन !

भूला जग बिल्कुल अपना-पन,
दैववाद पर बना विकल-मन;
मानव में तू मानवता का लाया नव-स्पन्दन !
वीर जिन ! चरणों में वन्दन !

विश्व शान्ति के अमर प्रशासक,
द्वन्द्व वैर वैषम्य विनाशक,
कोटि कोटि कंठों से गुंजित हुआ 'जयतु त्रिशलानन्दन' !
वीर जिन ! चरणों में वन्दन !



विश्व के दुख दूर हों कब ?
भय सदा दुष्कर्म से हो,
प्रेम सच्चा धर्म से हो,
सत्य पर बलिदान होने के लिए सब शूर हों जब !
विश्व के दुख दूर हों तब !!

वाणी पर हों सुकोमल,
हो [illegible] भी न छल-बल,
[illegible] निज वासना के प्रति निरन्तर क्रूर हों जब !
विश्व के दुख दूर हों तब !!

अमर-सन्देश

हठीले भाई, जाग जाग अन्तर में !

छाई काली घटा घुमड़ के,
आया अन्धड़ प्रबल उमड़ के,
ज्ञान-दीप बुझने ना पाए, सावधान अन्दर में !

भोगों में ही जीवन गाला,
लक्ष्य न अपना तनिक सँभाला,
मानुष क्या बन मानुष ही है, समझ नहीं बन्दर में।

साथी तेरे गए अगाड़ी,
तू क्यों सोता पड़ा अनाड़ी
देख, पिछड़ना ठीक नहीं है, जीवन के समर में।

कायर बन कर रोता क्या है ?
'अमर' रुदन में होता क्या है ?
प्रखर बोध कर उठ, छुपा है नाहर इस पञ्जर में।

आँखें खोल

खोल, मन ! अब भी आँखें खोल !
बड़ा लाभ कर, मिला तुझे है जीवन अति अनमोल !

जगपति के चरणों में सोजा
प्रेम सुधा पी पागल होजा,
प्राणों पन में अथ इति खोजा,
प्रेम की मदिरा ढोल

मैं कौन हूँ

मैं न हूँ किसी तरह भी हीन !
अतल अमल आनन्द-जलधि का मैं हूँ सुखिया मीन !!
संसारी झंझट का चहुँ दिशि बिछा हुआ है जाल,
घिरा रहे मुझको न कभी भी होता तनिक खयाल,
मैं तो हूँ अपने में लवलीन !

आत्म-लक्ष्य से मुझे डिगाने हों लाखों आघात,
वज्र-प्रकृति का बना हुआ हूँ क्या डिगने की बात,
स्वप्न में भी न बनूँगा दीन !

भव-सागर से तैर रहा हूँ हुआ समझ लो पार,
क्या चिन्ता अब खुला खुला वह मोक्षपुरी का द्वार;
विश्व मे मैं हूँ इक स्वाधीन !

हानि-लाभ हो, स्तुति-निन्दा हो, मान और अपमान,
अच्छा-बुरा भले कुछ भी हो, मैं सब से वेभान;
कौन क्या देगा लेगा छीन !

अन्धकार विध्वस्त हुआ है, बढ़ा ज्ञान-आलोक,
'अमर' शान्ति-सन्देश सुनेगा सकल चराचर लोक;
समुन्नत हूँ मैं नित्य नवीन !

